ABP News

लेखक, पत्रकार और चुनाव विश्लेषक

अभय कुमार दुबे

रजनी कोठारी: नये रैडिकलिज़म की खोज

Tue, Jan 20, 2015

भारतीय राजनीतिशास्त्र के अनूठे आचार्य रजनी कोठारी (1928-2015) ने अगर ज़िंदगी के शुरुआती दौर में अपने पिता फौजा लाल कोठारी की बात मान ली होती तो वे विद्वान बनने के बजाय उन्हीं की तरह हीरों-जवाहरातों के शीर्ष व्यापारी होते. लेकिन, कोठारी ने ऐसा नहीं किया, और पिता के देहांत के बाद अपने हिस्से में आयी सम्पत्ति का कुछ भाग बेच कर युरोप चले गये जहाँ ज्ञान की खोज में वे जर्मनी से लंदन तक गये और अंत में लंदन स्कूल ऑफ इकॉनॉमिक्स ऐंड पॉलिटिकल साइंस से पढ़ाई करने के बाद भारत लौटे.

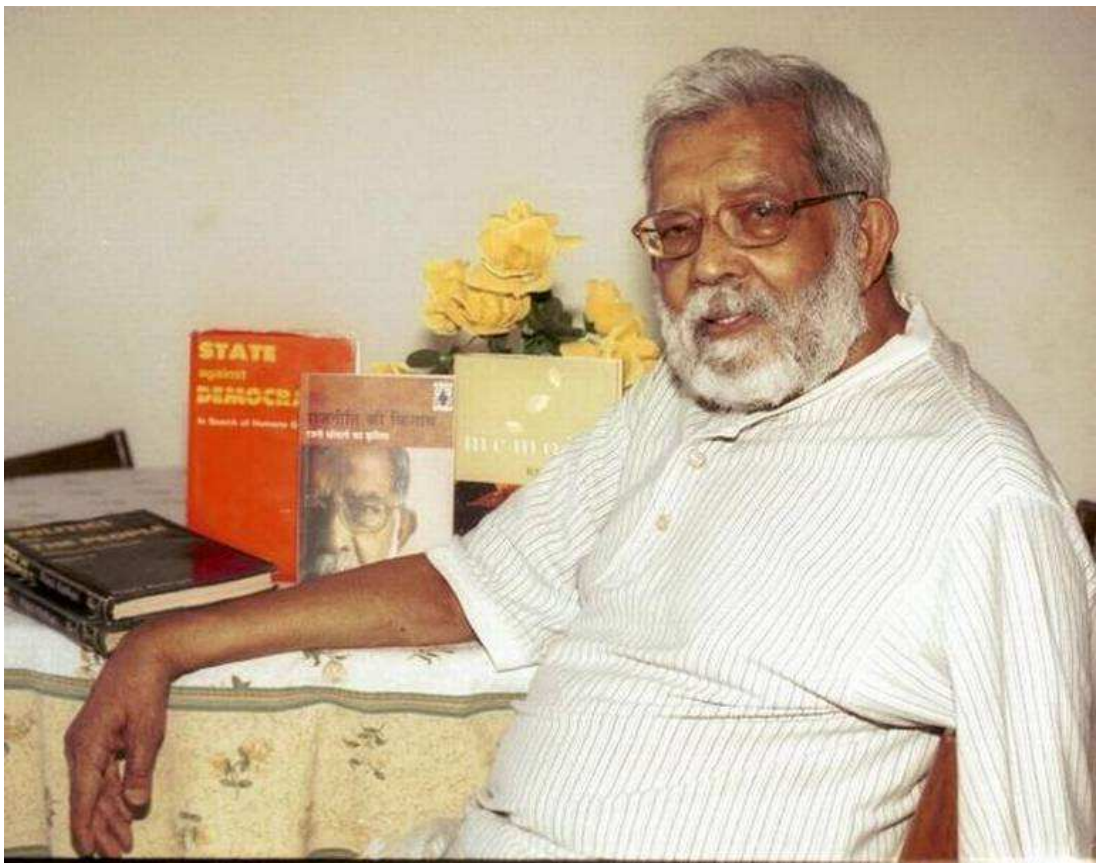

रजनी कोठारी ने अगर व्यापारी होना स्वीकार कर लिया होता तो उनकी धन-सम्पत्ति की तूती अपने पिता की ही तरह पूरे दक्षिण एशिया में बोल रही होती. लेकिन, एक भारतीय राजनीति के अध्येता के रूप में आज उनकी ख्याति एशिया से परे पूरे भारत में फैली हुई है. उनकी रचनाओं का अध्ययन किये बिना इस महादेश में होने वाली समाज और राजनीति की अन्योन्यक्रिया की सही समझ हासिल नहीं की जा सकती.

यह रजनी कोठारी ही थे जिन्होंने साठ के दशक की शुरुआत में छपी अपनी पहली लेखमाला और पहली पुस्तक 'पॉलिटिक्स इन इण्डिया' से राज, समाज और राजनीति के अध्ययन के स्थापित आयामों का खण्डन करते हुए राजनीतीकरण के ज़रिये भारत जैसे पारम्परिक समाज के आधुनिकीकरण की थीसिस दी. उन्होंने दो अत्यंत महस्त्रवपूर्ण रचनाएं और कीं जिनमें एक थी 'भारत की कांग्रेस प्रणाली' और दूसरी थी 'जातियों का राजनीतीकरण'. कांग्रेस को भारतीय समाज की विशिष्टताओं से अनुकूलित एक 'सिस्टम' के रूप में देख कर कोठारी ने जहाँ यह प्रदर्शित किया कि कांग्रेस के इतने दीर्घकालीन वर्चस्व का आधार क्या है, वहाँ नेहरू के अवसान के बाद साठ के दशक के अंतिम वर्षों में उन्होंने तर्क दिया कि अब कांग्रेस प्रणाली यों अपनी चौधराहट कायम नहीं रख पाएगी. कोठारी ने अपनी सबसे प्रभावी थीसिस जातियों के राजनीतीकरण के रूप में दी.

परम्परा के आधुनिकीकरण की अपनी बुनियादी समझ पर भरोसा करते हुए कोठारी ने अद्भुत प्रतिभा और कौशल के साथ दिखाया कि जातियां आधुनिक राजनीति में भागीदारी करने के दौरान किस तरह बदल जाती हैं. उनके कर्मकाण्डीय स्वरूप का क्षय होता है और वे सेकुलर रूप ग्रहण करती चली जाती हैं. इस तरह राजनीति पर जातिवाद हावी नहीं होता, बल्कि जातियों का राजनीतीकरण हो जाता है.

चुनावी अध्ययनों और अपने फील्डवर्क के साथ-साथ जाति-प्रथा के अकादमीय अध्ययन के दौरान कोठारी जाति की संरचना की एक ऐसी खूबी देख पाने में सफल रहे जिस पर उस समय तक लोगों का ध्यान नहीं गया था. उन्हें लगा कि कोई जाति सिर्फ सजातीय विवाह, कर्मकाण्डीय छुआछूत और रीति-रिवाजों के ज़रिये दूसरी जाति से दूरी बना कर ही नहीं रखती, बल्कि कुछ और भी करती है. जातियाँ तरह-तरह की दलबंदियों, जातीय विभेदों, विभिन्न तबकों में गठबंधन-पुनर्गठबंधन और सामाजिक प्रगति की लगातार कोशिशों में भी भागीदारी करती हैं. जाति के कर्मकाण्डीय रूप के मुकाबले यह उसका सेकुलर रूप है.

कोठारी की मान्यता यह बनी कि आधुनिक राजनीति से जाति की अन्योन्यक्रिया उसके इसी पहलू को इतना उभार देती है कि उसकी प्राथमिकताएं बदल जाती हैं. कोठारी को जाति प्रथा के ध्वंस की कोई क्रांतिकारी गलतफहमी नहीं थी. उन्हें तो सामाजिक जागरूकता के आलोचनात्मक मानदंह बदलते हुए दिख रहे थे. कोठारी का यह लेख एक भविष्यवाणी की तरह सामने आया. उन्होंने इसी लेख में घोषणा की

कि नेहरू युग का नेतृत्व अपने आखिरी दौर से गुज़र रहा है और नये किस्म के राजनेता उभर रहे हैं जिन्हें राजनीति के नये उद्यमी करार दिया जा सकता है. राजनीति के मंच पर मुलायम सिंह यादव, लालू यादव, कांशी राम और मायावती जैसे नेताओं के उभार को कोठारी की भविष्य-दृष्टि के सही होने के प्रमाण के रूप में भी देखा जा सकता है.

कोठारी का विमर्श न तो आधुनिकता की समग्र आलोचना पर आधारित है और न ही राष्ट्र-राज्य के सम्पूर्ण नकार पर. वे परम्परा की खोज में नहीं थे और न ही आधुनिकता को ही परम्परा बनाने यानी उसके भारतीयकरण का आह्वान करते थें. सर्व धर्म समभाव के रूप में इसी तरह वे सेकुलर विमर्श के निंदक के रूप में नहीं उभरते, पर लोकतंत्र के संदर्भ में उसकी सीमाओं की तरफ ज़रूर ध्यान खींचते थे. गांधी विचार भी उनके लिए अंतिम आदर्श नहीं था. समाजवादियों की खामियां भी उनके सामने स्पष्ट थीं. वे राज्य की संस्था के परे जाना चाहते थे, लेकिन उनका मक़सद राज्य को उसकी जनोन्मुख भूमिका में लौटना ही लगता था. उनकी मान्यता थी कि समरूपीकरण और प्रौद्योगिकीय-प्रबंधकीय किस्म का राज्य उनकी निगाह में भारत के सामाजिक-राजनीतिक संकट की जड़ में है. सेकुलरवाद के विवादित विषय पर भी उनके विचार अलग तरह के थे. अपने कुछ बुद्धिजीवी मित्रों और सहयोगियों की भांति वे हिंदू सांप्रदायिकता को नेहरूवादी सेकुलरवाद के परिणाम की तरह नहीं देखते थे. विकल्पहीनता उन्हें सबसे ज़्यादा आहत करती थी. किसी ज़माने में एनजीओ परिघटना के व्याख्याता रहे कोठारी को आगे चल कर नये सामाजिक आंदोलनों और गैर-सरकारी स्वयंसेवी संगठनों से उन्हें खास उम्मीद नहीं रह गई थी. उन्हें लगता था कि वे अंतर्राष्ट्रीय वित्तीय पूंजी के जंजाल के शिकार हो चुके हैं.

भारत ही नहीं, भूमंडलीय पैमाने पर सामाजिक न्याय की खोज करते हुए रजनी कोठारी का संकल्प था विकल्प की खोज करना. भारत के स्थापित राजनीतिक अभिजनों के क्षमताविहीन हो जाने के बाद उन्हें लगता था कि राजनीति से जुड़ी असंय जनता राज्य और उसके नियामकों पर भरोसा करने के बजाय अपना भविष्य अपने हाथ में लेने वाली है. उदारतावादी लोकतंत्र नहीं, रजनी कोठारी का यूटोपिया प्रत्यक्ष लोकतंत्र का मॉडल की ओर झुक रहा था और राजनीतिशास्त्र की दुनिया एक और विचारोजक सूत्रीकरण की आहटें सुनने वाली थी. अगर भ्रष्टाचार विरोधी आंदोलन के उछाल के दिनों में कोठारी लगातार अस्वस्थ रहने के कारण अपेक्षाकृत निष्क्रियता के शिकार न हो गये होते, तो वे निश्चित रूप से एक नये रैडिकलिज़म के रूप में सामने आते.

बहरहाल, कोठारी की विरासत नई परिस्थितियों में ज्ञान की नई सम्भावनाएं तलाशने वाले समाज-विज्ञान की खोज की भी थी. भारतीय समाज-वैज्ञानिकों की नयी पीढ़ी को अभी उनकी यह उम्मीद पूरी करनी बाकी है.